ज्ञान तत्व 377

मंथन कमॉक–94 ''अहिंसा और हिंसा''

कुछ सिद्धांत है

1. अहिंसा की सुरक्षा के उद्देश्य से किसी भी सीमा तक हिंसा का प्रयोग किया जा सकता है।
2. शांति व्यवस्था हमारा लक्ष्य होता है। हिंसा और अहिंसा मार्ग ।
3. अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म माना गया है। धर्म की रक्षा करना राज्य का दायित्व होता है न कि धर्म पर आचरण करना।
4. अहिंसा और कायरता मे बहुत फर्क होता है । हर कायर अपने को अहिंसक मानने की भूल करता है।

बुद्ध और महावीर के पहले भारत मे अहिंसा और हिंसा के बीच सामाजिक संतुलन था। राज्य को छोडकर शेष पूरा समाज पूरी तरह अहिंसा का पक्षधर था। किसी भी प्रकार की हिंसा की न आवश्यकता थी न ही उसे नैतिक मार्ग माना जाता था। राज्य अहिंसक समाज रचना के लिये आवश्यक हिंसा करना अपना दायित्व समझता था। यह अलग बात है कि अलग अलग राज्य अपना कर्तब्य छोडकर आपस मे हिंसक टकराव शुरू कर देते थे जिसका परिणाम हमेशा बुरा होता था। बुद्ध और महावीर ने हिंसा और अहिंसा के बीच के संतुलन को बिगाडा। उन्होंने अहिंसा को मार्ग की जगह लक्ष्य मान लिया। इसका परिणाम हुआ कि राज्य मे उचित अनुचित का भ्रम पैदा हुआ और समाज में संतुलन की जगह कायरता का विकास हुआ। दुनियां के अन्य देशों में यहूदी हिंसा और अंहिसा के बीच सुतुलित थे। लेकिन इशु मसिंह ने अहिंसा के पक्ष मे संतुलन बिगाडा। उसके बाद इस्लाम का उदय हुआ और इस्लाम नें एक पक्षीय अहिंसा के विरूद्ध एक पक्षीय हिंसा का समर्थन कर दिया। बुद्ध, महावीर और यीशु मसीह की कायरता प्रधान शिक्षाओं के परिणाम स्वरूप इस्लाम सारी दुनियां में बहुत तेजी से आगे बढा।

इस्लाम के विस्तार की चपेट में भारत भी आया और भारत कई सौ वर्षो तक विदेशीयों का गुलाम बना रहा। स्वतंत्रता के लिये भारत में दो मार्ग शुरू हुए उनमें भी सन 1857 से लेकर 1947 तक के 90 वर्षो मे अनवरत चले हिंसक मार्ग ने कोई सफलता नही की। दूसरी ओर गांधी के अहिंसक मार्ग ने बीस तीस वर्षो मे ही सफलता कर ली क्योकि भारत की गुलामी लोक तांत्रिक और अहिंसक अंग्रेजो के पास थी। यदि यह गुलामी मुसलमानो या साम्यवादियों की रही होती तो गांधी मार्ग किसी भी रूप मे सफल नही हो पाता।

शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के लिये राज्य को कभी भी अहिंसा को अपना मार्ग नही मानना चाहिये । यदि राज्य ऐसी भूल करता है तो उसके दुष्परिणाम होते है और समाज मे हिंसा की आवश्यकता बढती चली जाती है। स्वतंत्रता के समय गांधी हत्या के बाद गांधीवादियों ने भूल से अहिंसा को मार्ग की जगह लक्ष्य मान लिया। इसका अर्थ हुआ कि राज्य को भी उचित की जगह न्यूनतम हिंसा का उपयोग करना चाहिये। मार्ग को लक्ष्य मानने की गांधीवादी भूल का लाभ उठाया संघ परिवार ने, साम्यवादियों और कटटरपंथी मुसलमानो ने। इन तीनो ने मिलकर समाज मे हिंसा की आवश्यकता की भूख पैदा की। अहिंसा की पक्षधर गांधीवादी सरकारे अराजकता को नही रोक सकी। परिणाम स्वरूप समाज मे अराजकता से निपटने के लिये एक ऐसे राज्य की आवश्यकता महसूस की गयी जो अहिंसा की सुरक्षा के लिये हिंसा को एक उचित मार्ग मानता हो। हमे इस मामले मे नरेन्द्र मोदी से अधिक अच्छा व्यक्ति कोई नही मिला। परिणाम आज सबके सामने है।

जब भी संगठित हिंसा के विरूद्ध कायरता उबाल खाती है तो क्षणिक हिंसा का आक्रोश प्रकट होता है। भारत मे सिखो ने जब ऐसी ही भूल की तो देश भर मे ऐसा ही क्षणिक उबाल आया और हजारो निर्दोष सिख मारे गये। जब गोधरा कांड के समय ऐसा ही उबाल आया तो नरेन्द्र मोदी

ने उसका नेतृत्व किया और हजारो निर्दोष मुसलमान मारे गये । लगता था कि इन घटनाओ से इन दोनो संगठनो पर दीर्घकालिक प्रभाव होगा और वे समाज मे सहजीवन और अहिंसा का महत्व समझेगे। लेकिन अब भी ऐसे कोई सुधार या पश्चाताप के लक्षण नही दिख रहे है भले ही परिस्थितियो की प्रतीक्षा क्यो न की जा रही हो।

इसके पूर्व भी नागासाकी और हिरोसिमा मे निर्दोष लाखो लोग मारे जा चुके है। आज तक यह तय नही हो पाया कि उन हत्याओ मे अमेरिका गलत था। साथ ही मुझे तो व्यक्तिगत रूप से महसूस होता है कि अमेरिका के पास उसके अतिरिक्त कोइ अन्य विकल्प नही था क्योकि अहिंसा की स्थापना के लिये समुचित बल प्रयोग करना उचित होता है और अमेरिका ने वह किया। यह अलग बात है कि अमेरिका के इस बर्बर आक्रमण से दुनियां ने सीख ली किन्तु अब भी भारत के सिख और मुसलमान अपनी दुविधा से दूर नही हो पा रहे है। उन्हे यह दुविधा दूर करके सहजीवन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता स्पष्ट करनी चाहिये । समाज मे हिंसा और संगठन का कोई औचित्य नही है और राज्य व्यवस्था मे अहिंसा का कोई औचित्य नही है । दोनो को अपनी अपनी सीमाए समझनी चाहिये । दोनो का घालमेल उचित नही। संघ परिवार मे हिसा और अहिंसा के मामले मे मुसलमानो और साम्यवादियो के समान ही विचार रखता है। स्पष्ट है कि भारत की सामाजिक व्यवस्था अहिंसा की जगह कायरता के रूप मे दिखती है। हिंसा समर्थक सभी संगठनो से एक साथ निपटना समाज के लिये कठिन है। इसलिये शत्रु का शत्रु मित्र होता है इस आधार पर अल्पकाल के लिये दो दिशाओ मे ध्रुवीकरण हो रहा है । एक तरफ संघ परिवार के विरूद्ध संगठित इस्लाम और साम्यवाद है तो दूसरी तरफ है संगठित इस्लाम और साम्यवाद के विरूद्ध संगठित हिन्दुत्व जिसे हम संघ परिवार कहते है। मै तो पूरी तरह अहिंसा का पक्षधर हूॅ और राज्य को अहिंसा से दूरी बनानी चाहिये । मै चाहता हू कि वैचारिक तथा सामाजिक धरातल पर किसी भी प्रकार की हिंसक विचार धारा का विरोध करना चाहिये और राजनैतिक धरातल पर हिंसक प्रवृत्तियो के कुचलने के लिये किसी भी सीमा तक राज्य को मजबूत होना चाहिये। अहिंसा परम धर्म है और इस परम धर्म को परम धर्म के रूप मे स्थापित होना चाहिये। इस धार्मिक कार्य मे हम सबकी सह भागिता आवश्यक है।

मंथन कमॉक–95 ''कश्मीर समस्या''

कुछ सर्व स्वीकृत सिद्धांत हैं।

1. कश्मीर समस्या दो देशों के बीच कोई बॉर्डर विवाद नहीं है बल्कि विश्व की दो संस्कृति दो विचारधाराओं के बीच का विवाद है।

2. जब अल्पसंख्यक संगठित होकर बहुसंख्यक असंगठितों को अलग–अलग दबाते हैं या ठगते हैं और कभी इन असंगठितों को संगठित के रूप में ऐसा आभास हो जाता है तो संगठित अल्पसंख्यक लंबे समय के लिए अविश्वसनीय हो जाते हैं।

3. असंगठित विश्व से संगठन की ताकत पर निरंतर लाभ उठाने वाला इस्लाम पूरी दुनियां में एक साथ अविश्वसनीय हो गया है।

4. कोई भी व्यक्ति, व्यक्ति समूह या संगठन किसी विवाद के निपटारे के लिए सामाजिक न्याय या बल प्रयोग में से एक का ही सहारा ले सकता हैं दोनों का नहीं।

5. भारत के 70 वर्षों के शासनकालों में अल्पसंख्यकों और सत्तारूढ़ो के बीच अघोषित समझौता होने के कारण कश्मीर समस्या फलती–फूलती रही।

6. कश्मीर के संबंध में भारतीय मुसलमानों के बहुमत की निष्ठा या तो निष्क्रिय रही है या संदेहात्मक।

7. भारत का मुसलमान भी दुनियां के मुसलमानों की तरह ही राष्ट्र की तुलना में संगठन को अधिक महत्वपूर्ण मानता है।

8. यदि किसी अन्यायी के साथ कोई अन्य अन्यायी अन्याय करता है तो या तो हमें चुप रहना चाहिए या कमजोरों का साथ देना चाहिए। न्याय–अन्याय महत्वपूर्ण नहीं।

कश्मीर समस्या का पुराना इतिहास रहा है। भारत के मुस्लिम बहुमत ने धर्म के आधार पर भारत के विभाजन की जिद्द की जिसे अंग्रेजों ने मान लिया। जहां–जहां अंग्रेजों का प्रत्यक्ष शासन था उन क्षेत्रों को भारत व पाकिस्तान में धर्म के आधार पर बांट दिया गया किन्तु जहां–जहां राजा थे उन क्षेत्रों के राजाओं को स्वतंत्र मान लिया गया कि वे भारत में या पाकिस्तान में चाहे तो मिल सकते हैं अन्यथा अलग भी रह सकते हैं। ऐसे करीब 500 स्वतंत्र राज्यों में से कश्मीर, हैदराबाद और जूनागढ़ को छोड़कर बाकी सबने भारत या पाकिस्तान में से किसी एक का चुनाव कर लिया। यह तीन टाल–मटोल करते रहे। जूनागढ़ पर भारत ने बलपूर्वक कब्जा कर लिया। हैदराबाद की जनता हिंदू थी, राजा मुसलमान। वहां आर्य समाज के नेतृत्व में हिंदुओं ने विद्रोह कर दिया और भारतीय सेना की सहायता से हैदराबाद का भारत में विलय हो गया। कश्मीर में मुस्लिम बहुमत था और राजा हिंदू था। राजा भी भारत–पाकिस्तान में ना मिलकर स्वतंत्र रहने की सोच रहा था तभी पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया और कश्मीर के राजा ने संभावित हार के डर से कश्मीर का भारत में विलय कर दिया। इस तरह संवैधानिक आधार पर भारत में कश्मीर का विलय हो गया किंतु कुछ भाग पाकिस्तान के कब्जे में था और पाकिस्तान कश्मीर के विलय को मान्यता न देकर युद्धरत रहने का इच्छुक था। इसलिए यह मामला संयुक्त राष्ट्र संघ में चला गया और राष्ट्र संघ ने जनमत संग्रह की सलाह दी जिसे भारत ने स्वीकार कर लिया। उस समय कश्मीर की मुस्लिम आबादी हिन्दु राजा के पक्ष में थी और स्पष्ट दिखता था कि जनमत संग्रह में भारत का पक्ष मजबूत रहेगा। इसी बीच गांधी की हत्या हो जाती है और पाकिस्तान को यह अवसर मिलता है कि वह कश्मीर के मुसलमानों को हिन्दुओं के विरूद्ध लामबंद कर सके। धीरे–धीरे स्थितियॉ बदलती गयीं और जनमत संग्रह टलता गया। पाकिस्तान को चाहिए था कि वह संयुक्त राष्ट्र संघ में अधिक जोर शोर से बात उठाता और उस पर पूरा विश्वास करता किंतु पाकिस्तान ने एक–दूसरा मार्ग भी अपनाया और भारत से बलपूर्वक कश्मीर छीनने का प्रयास किया। यहॉ से विश्व जनमत में पाकिस्तान का पक्ष कमजोर हुआ। न पाकिस्तान ताकत के बल पर कुछ हासिल कर पाया न ही विश्व–व्यवस्था के माध्यम से।

प्रशांत भूषण ने कश्मीर में जनमत संग्रह को न्याय संगत बताया। यह बात न्यायसंगत दिखती भी है किंतु प्रशांत भूषण की आवाज के विरूद्ध देशभर में विपरीत प्रतिकिया हुई क्योंकि प्रशांत भूषण तटस्थ व्यक्ति न माने जाकर वामपंथी अल्पसंख्यक पक्ष के वकील के रूप में माने जाते है। साथ ही महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कश्मीर समस्या दो देशों के बीच कोई बार्डर समस्या नहीं है बल्कि एक मुस्लिम विस्तारवादी संस्कृति से अन्य संस्कृतियों की सुरक्षा का प्रश्न है। मुसलमान जहॉ बहुमत में होता है वहॉ शरीया का शासन लागू करता है और जहॉ अल्पमत में होता है वहॉ या तो बराबरी का व्यवहार चाहता है या न्याय संगत। भारत अकेला ऐसा देश है जहॉ का मुसलमान अल्पसंख्यक होते हुए भी अपने लिए विशेषाधिकार की सुविधा प्राप्त करता रहा और संवैधानिक आधार पर प्राप्त सुविधाओं से हिन्दुओं को दुसरे दर्जे का नागरिक बनाकर रखा। स्वाभाविक था कि कश्मीर के मुसलमानों का भी हौसला बढता रहा और वे भी उस दिन की प्रतीक्षा करते रहे जब भारत दारूल इस्लाम बन जायेगा। इस दारूल इस्लाम के संघर्ष में भले ही पाकिस्तान कश्मीरी मुसलमानों के साथ प्रत्यक्ष दिखता हो किन्तु कश्मीरियों को दुनियां भर के सांप्रदायिक मुसलमानों की सहानुभूति मिलती रही। मैं आपको स्पष्ट कर दूॅ कि मुस्लिम देश सांप्रदायिक नहीं होते है बल्कि सांप्रदायिक भावना व्यक्तिओं में होती है और वहीं सांप्रदायिक भावना संगठित होकर राष्ट्र की पहचान बन जाती है। यदि कोई मुस्लिम बहुल देश आम मुस्लिम धारणा के विरूद्ध न्याय की बात करने लगे तो वह लम्बे समय तक नहीं टिक पाता। भले ही राजनैतिक परिस्थितिओं के कारण बहुत से मुस्लिम देश भारत के पक्ष में रहे किन्तु उन देशों के कट्टरवादी मुसलमानों की सहानुभूति व सक्रियता कश्मीर के मामलों में भारत के विरूद्ध रही। 1500 वर्षो में आम मुसलमानों के बीच यह धारणा मजबूती से स्थापित है कि वे यदि टकराते रहेंगे तो अंतिम लडाई वहीं जीतेगे क्योंकि खुदा उनके साथ है। न्याय–अन्याय अथवा सामाजिक सोच उनके लिए कोई मतलब नहीं रखती। यही कारण है कि दुनियां

के अन्य समूह लम्बे समय तक लडने के बाद हित–अहित का ऑकलन करते है और लडाई छोड देते है किन्तु मुस्लिम समूह बर्बाद होने तक भी लडते रहते है क्योंकि उन्हें विश्वास है कि जीतेगें वही। प्रशांत भूषण को यह बात समझनी चाहिए थी कि कश्मीर समस्या न तो बार्डर समस्या है न ही न्याय–अन्याय से जुडा कोई मामला। यदि कश्मीर पाकिस्तान को दे दिया जाए तब भी किसी समस्या का समाधान नहीं होगा क्योंकि लडाई दारूल इस्लाम की धारणा से है। युद्ध का नया मैदान या तो कश्मीर से हटकर पंजाब की ओर बढ जायेगा अथवा आसाम में नया मोर्चो खुल जायेगा। जब युद्ध होना निश्चित ही है तब कश्मीर में न्याय–अन्याय की बात करना एक आत्मघाती और मूर्खतापूर्ण कदम होगा। 70 वर्षो तक भारत ने तृष्टिकरण का राजनैतिक खेल खेलकर कश्मीर समस्याओं को मजबूत होने दिया। अब ऐसी भूल नहीं दोहरानी चाहिए।

सारी दुनियां के लिए कश्मीर एक लिटमस टेस्ट की तरह है। आजतक दुनियां में मुसलमानों ने कहीं भी हार नहीं मानी भले ही कितना भी लम्बा युद्ध क्यों न चला हो। कश्मीर में उनके अस्तित्व की लडाई है। यहॉ का वातावरण उनके लिए परिस्थितियों के विपरीत है। दुनियां भर में उनकी विश्वसनीयता घट रही है। राजनैतिक समीकरण उनके विरूद्ध जा रहे है। मुस्लिम देश आम मुस्लिम धारणाओं के विपरीत आपस में ही बंटे हुए है। ऐसी स्थिति में उनके समक्ष कश्मीर में हार जाने का खतरा मंडरा रहा है। यदि कश्मीर में वे हार मानकर सहजीवन स्वीकार कर लेते है तो उनका 1400 वर्षों का विश्वास चूर–चूर हो जायेगा कि खुदा उनके साथ है और अंतिम विजय उनकी होगी। दूसरी ओर भारत में आबादी की दृष्टि से भी वे बहुत कम है और सरकार भी अब बदल गयी है। तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत के मुसलमानों में भी बहुत बडा वर्ग अब सहजीवन की आवश्यकताओं को भी समझने लगा है। वह मानने लगा है कि उसे भारत में ही रहना है और कश्मीर के नाम पर किसी प्रकार का विवाद न ही न्यायसंगत है न ही उसके हित में है। ऐसे बदले वातावरण में अब कुछ सांप्रदायिक तत्व बातचीत से समाधान की वकालत करते दिखते है। स्पष्ट मानिए कि जो लोग बातचीत से कश्मीर समस्या का समाधान करने की बात करते है वे पूरी तरह गलत है और निराश भी है। उन्हें साफ–साफ दिख रहा है कि कश्मीर की लडाई में भारत पक्ष सब ओर मजबूत हो रहा है और बातचीत का कोई मार्ग ही कुछ उम्मीद जिंदा रख सकता है।

कश्मीर समस्या भारत की बडी समस्या है क्योंकि सारी दुनियां की शांति का भविष्य कश्मीर पर टिका हैं। जो लोग कश्मीर में अब भी भारत के विरूद्ध टकराव की उम्मीद लगाये बैठे है ऐसे लोगों को न्याय–अन्याय की परवाह किए बिना नष्ट कर देने का प्रयत्न कर देना चाहिए। जो लोग कश्मीर में शांति पूर्ण वार्ता की वकालत करते है ऐसे लोगों का सामाजिक बाहिष्कार होना चाहिए। साथ ही भारत के जो मुसलमान कश्मीर मामले में अब भी चुप है उन्हें खुलकर भारत के साथ अपना पक्ष रखना चाहिए। कश्मीर तो भारत में ही रहेगा। कहीं ऐसा न हो कि कश्मीर को ले जाते–ले जाते कुछ ओर भी क्षेत्र भारत में शामिल न हो जाये।

मंथन कमॉक–96 बालिग मताधिकार या सीमित मताधिकार

कुछ सर्वस्वीकृत निष्कर्ष हैं।

1. किसी भी इकाई के संचालन के लिए एक सर्वस्वीकृत संविधान होता है जिसे मानना इकाई के प्रत्येक व्यक्ति के लिए बाध्यकारी होता है।
2. किसी भी संविधान के निर्माण में इस इकाई के प्रत्येक व्यक्ति की सहभागिता अनिवार्य होती है। इकाई के सब लोग मिलकर भी किसी व्यक्ति को संविधान निर्माण से अलग नहीं रख सकते।
3. व्यवस्था चाहे कोई भी हो, कैसी भी हो, किन्तु वह संविधान के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य है।
4. वर्तमान समय में लोकतंत्र सबसे कम बुरी व्यवस्था है। इसे लोकस्वराज की दिशा में जाना चाहिए।
5. प्रत्येक व्यक्ति के कुछ प्राकृतिक अधिकार होते हैं। इन अधिकारों को उसकी सहमति के बिना संविधान भी नहीं छीन सकता।
6. किसी भी संविधान में सर्वसम्मति से भी किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता में किसी दीर्घकालिक कटौती का नियम नहीं बन सकता।

7. व्यक्ति समूह अर्थात समाज के अनुसार व्यवस्था कार्य करने के लिए बाध्य होती है और व्यवस्था के अनुसार व्यक्ति बाध्य होता है। व्यक्ति और व्यक्ति समूह के बीच अंतर करना आवश्यक है।

8 संविधान व्यक्तियों की अपेक्षा सर्वोच्च होता है किन्तु व्यक्ति समूह की तुलना में सर्वोच्च नहीं होता। व्यक्ति समूह सर्वोच्च होता है।

जब भारत का संविधान बन रहा था उस समय भी यह चर्चा मजबूती से उठी थी कि मतदान का अधिकार सिर्फ योग्य लोगों तक सीमित होना चाहिए और योग्यता का कोई एक मापदंड बनना चाहिए। अशिक्षित, अयोग्य, पागल या अपराधी यदि मतदान करेंगे तो संपूर्ण राष्ट्रीय व्यवस्था पर इसका दुष्प्रभाव निश्चित है। इस प्रकार का तर्क देने वालों में सरदार पटेल प्रमुख व्यक्ति थे। दूसरी ओर एक पक्ष ऐसा था जो बालिग मताधिकार का पक्षधर था और प्रत्येक व्यक्ति को व्यवस्था में समान रूप से भागीदार बनाना चाहता था चाहे किसी मापदंड के आधार पर अयोग्य ही क्यों न हो। इस पक्ष के प्रमुख पैरवीकार पंडित नेहरू को माना जाता है। बालिग मताधिकार को स्वीकार करते हुए सीमित मताधिकार की मांग छोड दी गई फिर भी कभी–कभी इस तरह की मांग उठती रहती है और अब तक उठ रही है। यदि मताधिकार के लिए किसी योग्यता को आधार बनाया गया तो सबसे पहला प्रश्न यह खडा होता है कि इस आधार को बनाने का निर्णय कौन–सी इकाई करेगी और उस इकाई के चयन में भारत के प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका होगी या नहीं। यदि इस इकाई ने गलत निर्णय लिए तो उसकी समीक्षा कौन करेगा? जो भी सर्वोच्च इकाई होगी उस सर्वोच्च इकाई के निर्माण में प्रत्येक व्यक्ति भूमिका ही लोकतंत्र है। लोकतंत्र में संविधान का शासन होता है शासन का संविधान नहीं। संपूर्ण राजनैतिक व्यवस्था एक संविधान के द्वारा संचालित होती है और संविधान से उपर लोक होता है। जिसका अर्थ होता है भारत के प्रत्येक नागरिक का संयुक्त समूह। इस संविधान निर्माण या संशोधन से किसी भी नागरिक को अलग नहीं किया जा सकता चाहे वह कोई भी हो क्योंकि प्राकृतिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार, समान स्वतंत्रता प्राप्त है और वह व्यक्ति मतदान द्वारा अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को संविधान में शामिल करके स्वयं को व्यक्ति से नागरिक घोषित करता है। यह सारा कार्य उसकी सहमति से होता है।

तर्क दिया जाता है कि अशिक्षित लोग जब संविधान और व्यवस्था का अर्थ ही नहीं जानते तो उनके वोट देने का क्या लाभ है। ऐसे लोग किसी भी रुप में बहकाये जा सकते हैं जिसका दुष्परिणाम सब को भोगना पड़ता है। प्रश्न महत्वपूर्ण है क्योंकि ऐसे लोग बहकाये जा सकते हैं किंतु एक दूसरा प्रश्न भी खड़ा होता है कि यदि बहकाने की क्षमता रखने वाले लोग ही सर्वशक्तिमान हो जाए तब समाज का क्या होगा। जिनकी नीयत पर संदेह है उन्हें सारी शक्ति नहीं दी जा सकती। लोकतंत्र में विधायिका और कार्यपालिका के बीच भिन्न प्रकार की योग्यताओं का समन्वय होना चाहिए। विधायिका में सम्मिलित लोग सिर्फ संविधान और कानून बनाते हैं किंतु क्रियान्वित नहीं कर सकते इसलिए उनकी नीयत पर विश्वास अधिक महत्व रखता है। कार्यक्षमता कम महत्व की मानी जाती है। कार्यपालिका के लोगों की कार्यक्षमता विशेष महत्व रखती है। नीयत का कम महत्व माना जाता है। यदि विधायिका के चयन में भी कार्यपालिका के समान ही नीयत की तुलना में कार्यक्षमता को अधिक महत्वपूर्ण मान लिया गया तब चेक एंड बैलेंस का महत्व समाप्त हो जाएगा। हरियाणा सरकार तथा अन्य कई प्रदेशों में विधायकों के लिए न्यूनतम शिक्षा का प्रावधान लागू किया गया है। यह प्रावधान पूरी तरह गलत है क्योंकि विधायिका सिर्फ कानून बनाने वाली इकाई है, क्रियान्वित करने वाली नहीं। विधायिका की नीयत सर्वोच्च मापदंड है कार्यक्षमता नहीं। यदि शिक्षा को मापदंड घोषित किया गया तब कबीर दास कभी विधायक या विधायिका के आगे नहीं बन सकते। यह भी साफ दिख रहा है कि समाज को बहकाने और ठगने में शिक्षित लोग अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। ऐसी स्थिति में ऐसे चालाक और धूर्त नीयत के लोगों को विधायिका में पहुँचने की प्राथमिकता पूरी तरह घातक सिद्ध होगी।

अब तक भारत में बालिग मताधिकार की छूट दी गई है। पागल को मताधिकार से वंचित किया गया है। अपराधी को भी चुनाव लड़ने से रोका गया है। मेरे विचार से यह सारे नियम आकर्षक दिखते हैं किंतु

न्याय संगत नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार प्राप्त है चाहे वह पागल और अपराधी क्यों ना हो। कल्पना करिए कि यदि कुछ डॉक्टरों ने मिलकर किसी व्यक्ति को षड्यंत्र पूर्वक पागल घोषित कर दिया तब क्या उसकी स्वतंत्रता छीन ली जाएगी और ऐसी स्वतंत्रता छीनने का नियम कानून बनाने की व्यवस्था से भी उसे बाहर कर दिया जाएगा। बालिग मताधिकार भी क्यों न्याय संगत माना जाए? क्यों नहीं जन्म लेते ही मत का अधिकार दे दिया जाए। हो सकता है यह आंशिक रूप से अव्यावहारिक लगे किंतु इसका कोई बहुत बड़ा दुष्प्रभाव नहीं हो सकता। हो सकता है कि इस तरह की प्रणाली कुछ अधिक खर्चीली हो किंतु यह मताधिकार सर्वोच्च व्यवस्था अर्थात संविधान के लिए होता है, न कि सरकार के लिए। सरकार के लिए तो प्रति 5 वर्ष में चुनाव करा सकते हैं और उसके लिए मतदान के नियम अलग तरह के भी बना सकते हैं किंतु संविधान निर्माण अथवा संविधान संशोधन के लिए आप किसी व्यक्ति को मतदान से वंचित नहीं कर सकते। भारत में संविधान निर्माण और संशोधन में भी विधायिका की अंतिम भूमिका होती है इसलिए आवश्यक है कि चुनावों में प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता पूर्वक भाग लेने का अधिकार दिया जाए। यदि आपने मतदाताओं की क्षमता पर संदेह व्यक्त किया तो यह उचित नहीं। भारत का मतदाता किसी अपराधी, पागल व विदेशी को योग्य मानता हैं तब मतदाताओं की इच्छा को ही सर्वोच्च सक्षम मापदंड मानना चाहिए। मतदाताओं की इच्छा और क्षमता के उपर कोई अन्य नियम कानून या मापदंड नहीं बनाया जा सकता। यदि आप मतदाताओं की योग्यता का कोई भी मापदंड बनाते हैं तो वह पूरी तरह गलत होगा और भविष्य में इसका दुरुपयोग भी हो सकता है। हो सकता है कि उसका दुरूपयोग कभी लोकतंत्र को तानाशाही में बदल दे और आप इसे किसी भी रुप में न रोक सके।

मैं तो इस मत का हूं कि सारी दुनियां के संचालन के लिए ऐसा संविधान बनना चाहिए जिसके बनाने में दुनियां के प्रत्येक व्यक्ति की समान भूमिका हो अर्थात 6 अरब व्यक्ति मतदान द्वारा ऐसा संविधान बना सके। इस संविधान के आधार पर ही विश्व सरकार की कल्पना की जा सकती है जो सिर्फ राष्ट्रो का ही प्रतिनिधित्व नहीं करेगी बल्कि व्यक्ति से लेकर विश्व तक के बीच कार्य कर रही इकाईयों का संघ होगी। इसका अर्थ हुआ कि विश्व व्यवस्था एक अरब परिवारो, कुछ करोड गांवो और इसी तरह प्रदेशों और राष्ट्रो का संघ होगी। ऐसी व्यवस्था में नीचे से लेकर ऊपर तक बने हुए छोटे से बड़े सभी संविधानों की व्यवस्था का समावेश होगा।

मैं स्पष्ट हूं कि मताधिकार को सीमित करने की मांग बहुत ही खतरनाक है और ऐसे प्रयत्न को पूरी तरह खारिज किया जाना चाहिए।

मंथन कमॉक–97 दान चंदा और भीख

कुछ सिद्धान्त है।

1 बाधा रहित प्रतिस्पर्धा और सहजीवन के बीच समन्वय ही आदर्श व्यवस्था मानी जाती है। प्रतिस्पर्धा के लिये असीम स्वतंत्रता और सहजीवन के लिये अनुशासन अनिवार्य है।

2 समाज को एक बृहद परिवार कहा जा सकता है। जिस तरह की संरचना परिवार की होती है वैसी ही समाज की भी होती है।

3 स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है तो सहजीवन और परिवार भावना विकसित करना उसका कर्तब्य ।

4 समाज मे कुछ परिवार अक्षम और कुछ सक्षम होते है। सक्षम परिवारो का कर्तव्य है कि वे अक्षम लोगो की सहायता करे।

5 वर्ण व्यवस्था के अनुसार वैश्य को छोडकर शेष तीन वर्ण के लोग आर्थिक दृष्टि से अक्षम माने जाते है। दान चंदा और भीख इन तीन वर्णो की व्यवस्था के आधार होते है।

6 कर्तव्य और अधिकार एक दूसरे के पूरक होते है। किसी के सामाजिक अधिकार तब तक पूरे नही हो सकते जब तक अन्य लोग कर्तव्य न करे।

7 वर्तमान समय मे दान चंदा और भीख का निरंतर दुरूपयोग हो रहा है। इसलिये इसपर नये तरीके से सोचने की आवश्यकता है। इन तीन मे भी चंदा अधिक बडा व्यवसाय बनता जा रहा है।

दान चंदा और भीख अलग अलग अर्थ और प्रभाव रखते है । दान स्वेच्छा से और अपनी क्षमतानुसार दिया जाता है। दान पर दान लेने वाले का पूरा अधिकार होता है । देने के बाद देने वाले का कोई अधिकार या हस्तक्षेप नही होता। यहां तक कि देने वाला उसका कोई हिसाब भी नही पूछ सकता। दान बिना मांगे दिया जाता है और देने के बाद किसी भी परिस्थिति मे वापस नही लिया जा सकता। किसी भी प्रकार का दान देने वाला कर्तव्य भावना से देता है। चंदा और दान मे बहुत फर्क होता है। चंदा दिया और लिया नही जाता बल्कि इकठठा किया जाता है। चंदे पर देने वाले का पूरा अधिकार होता है । वह कभी भी हिसाब मांग सकता है और विशेष परिस्थिति मे वापस भी ले सकता है। चंदा एक आपसी समझौता है जिसे हम सहभागिता भी कह सकते है। भीख एक भिन्न प्रकार की प्रकृया है । भीख मांगने पर दी जाती है। आवश्यकता का आकलन करके दी जा सकती हैं तथा भीख पर देने वाले का कोई अधिकार नही होता। भीख आमतौर पर दया की भावना से दी जाती है। भीख भी दान की तरह स्वेच्छा से दी जाती है जिसका न कभी हिसाब लिया जा सकता है न ही वापस मांगा जा सकता हैं।

यदि हम भारत की पुरानी व्यवस्था का आकलन करे तो दान चंदा और भीख एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था के रूप मे माना जा सकता है। प्रत्येक सक्षम व्यक्ति अपना कर्तव्य समझता है कि वह परिस्थिति अनुसार तीनो मे सहयोग करे। सरकार द्वारा लिया जाने वाला टैक्स भी चंदा की ही श्रेणी मे आता है। यदि हम भारत की वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की समीक्षा करें तो दान चंदा और भीख का पूरी तरह दुरूपयोग हो रहा है। अधिकांश लोगो ने तीनो को अपना व्यवसाय बना लिया है। वास्तविक भिखारी तो अब शायद ही दिखते है । पेशेवर भिखारी ही मिलते है यहां तक कि शारीरिक दृष्टि से पूरी तरह अक्षम और कुछ सक्षम लोग भी इसे व्यवसाय समझ लिये है। मैने तो सुना है कि कुछ गरीब लोगो को भीख मांगने के लिये जान बूझकर अपाहिज बनाया जाता है और उससे यह व्यापार कराया जाता है। चंदा मांगना तो एक धंधा बन ही गया है। चंदे के नाम पर अधिकांश धूर्त अपनी दुकानदारी चला रहे है। मैने अपने 60 वर्षो के कार्यकाल मे अपने रामानुजगंज शहर मे जब भी चंदा करने वालो के कार्य का आकलन किया तो एक दो सामाजिक संस्थाओ को छोडकर बाकी सब जगह आर्थिक घपला मिला चाहे वह यज्ञ के नाम पर होता हो या मंदिर या पूजा के नाम पर । यहां तक कि राष्टीय सुरक्षा के नाम पर भी किये गये धन संग्रह मे कई प्रकार की गडबडी प्रमाणित हो गई । अच्छी अच्छी नामी संस्थाओ के नाम पर भी होने वाले धन संग्रह मे भ्रष्टाचार प्रमाणित हुआ। सरकारें जो टैक्स के रूप मे चंदा लेती है उनमे भ्रष्टाचार तो जग जाहिर है। इसी तरह दान के नाम पर भी दुर्गति देखी जा रही है। बडे बडे मठाधीश आम लोगो को दान के लिये प्रेरित करते है और उस प्राप्त दान का दुरूपयोग करते है। धर्म के नाम पर या समाज सेवा के नाम पर दान मांगना फैशन बन गया है। सिद्धान्त रूप से दान मांगा नही जाता किन्तु वर्तमान समय मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दान मांगने वालो की समाज मे भीड लगी हुई है।

किसी महापुरूष ने कहा था कि जो मागने जाता है वह तो एक प्रकार से मर ही जाता है किन्तु जो मांगने पर भी नही देता उसकी मृत्यु मांगने वाले से भी पहले हो जाती है । आदर्श स्थिति मे इस कहावत का बहुत महत्व है। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों मे यह कहावत बहुत अधिक हानिकारक है। हर धूर्त इस कहावत का पूरा पूरा दुरूपयोग करता है । इसलिये किसी अन्य महापुरूष को यह सलाह देनी पडी कि कुपात्र को दिया गया दान दाता को भी नर्क मे ले जाता है। इसका अर्थ हुआ कि दान बहुत ही सोच समझकर दिया जाना चाहिये क्योकि यदि दान का दुरूपयोग हुआ तो उसके पाप मे दान दाता भी हिस्सेदार माना जायेगा। इसी तरह चंदा भी बहुत सोच समझकर ही देना चाहिये। और दिये जाने के बाद उसपर अपनी नजर अवश्य रखनी चाहिये। क्योकि बिना सोचे समझे चंदा देना भी एक प्रकार से असामाजिक तत्वो का प्रोत्साहन माना जायेगा। भीख के मामले मे हम उस समय दया कर सकते है जब कोई अक्षम और अपंग हो और उसके पास अपने भरण पोषण का कोई अन्य मार्ग उपलब्ध न हो । वर्तमान समय मे सरकार सबको भरण पोषण के पर्याप्त

साधन उपलब्ध करा रही है। मै नही समझता कि ऐसी परिस्थिति मे भीख मांगने का भी कोई औचित्य बचा है। दान चंदा या भीख न देना उतना हानिकर नही है जितना गलत व्यक्ति को देना। सरकार के टैक्स के मामले मे भी सतर्क रहने की आवश्यकता है । सरकारे मनमाना टैक्स लगाकर उसका भरपूर दुरूपयोग कर रही है। कोई ऐसी व्यवस्था सोची जानी चाहिये जिसमे सरकारी टैक्स पर भी कुछ अंकुश लग सके।

आजकल तो मतदान को भी दान कहकर प्रचारित किया जा रहा है। सिद्धान्त रूप से दान मांगा नही जाता किन्तु वोट के भिखारी दिन रात वोट मांगते भी है और उसे दान भी कहते है। वोट न तो दान है न ही भीख है । उसे आप चंदे की श्रेणी मे रख सकते है। मतदान का भी पूरा पूरा दुरूपयोग हो रहा है । इसे भी एक व्यवसाय बना दिया गया है। मेरा सुझाव है कि दान बहुत सोच समझकर दिया जाना चाहिये। दान और भीख की तुलना मे चंदा लेना देना अधिक घातक सिद्ध हो रहा है। चंदे का धंधा दान की प्रवृत्ति को भी निरूत्साहित कर रहा है। चंदा मांगना एक बुरी आदत है किन्तु बहुत बडे बडे लोग भी चंदा मांगकर अपने को गौरवान्वित महसूस करते है। कहते है मालवीय जी ने चंदे के माध्यम से बनारस हिन्दू विश्व विधालय खडा कर दियां। यह बात सच होते हुए भी मै किसी भी प्रकार के चंदा लेने और देने के विरूद्ध हूॅ क्योकि चंदा का कोई न तो हिसाब किताब रखा जाता है न ही किसी को दिखाया जाता है। यदि किसी कार्य के लिये धन संग्रह आवश्यक है और उसमे कोई घपला नही करना है तो उसे अधिकतम पारदर्शी होना चाहिये। साथ ही ऐसा धन संग्रह सिर्फ सहमत और सम्बंद्ध लोगो के बीच ही हो सकता है। दूसरे लोगो से नही मांगा जा सकता। वर्तमान समय मे दान चंदा और भीख के नाम पर जो खरपतवार खेतो मे पैदा हो गये है इन सबको नष्ट करने के लिये एक बार पूरे खेत की जुताई कर दी जाये और कोई बहुत आवश्यक पौधा हो तो उसे ही सुरक्षित रखा जाये । याद रखिये कि दान चंदा या भीख का दुरूपयोग आपके लिये भी घातक है और समाज के लिये भी ।

सामयिकी

हिन्दू पाकिस्तान या मुस्लिम हिन्दुस्तान

कांग्रेस के प्रमुख नेता शशि थरूर ने आशंका व्यक्त की है कि यदि मोदी सरकार फिर से चुनाव मे जीत गयी तो हिन्दूओ के पक्ष मे संविधान मे मनमाने बदलाव किये जा सकते है। यह भी खतरा है कि भारत हिन्दू पाकिस्तान के रूप मे विख्यात हो जाये।

पिछले 70 वर्षो से जो सरकार चल रही थी यदि उस समय के देश को मुस्लिम हिन्दुस्तान का नाम दिया जाये तो शशि थरूर की आशंका गलत नही है। पिछली सरकार के समय मुसलमानो को एक से अधिक विवाह महिला उत्पीडन स्वैच्छिक तलाक तथा अल्प संख्यक के रूप मे ऐसे विशेष अधिकार दिये गये थे जो बहुसंख्यको को प्राप्त नही थे । अल्प संख्यक और पिछली सरकार के बीच एक ऐसा अघोषित समझौता था जिसे हम मुस्लिम हिन्दुस्तान का नाम दे सकते है। संविधान संशोधन का अंतिम अधिकार उस राजनैतिक व्यवस्था के पास रिजर्व था। एकाएक सत्ता बदली और संविधान संशोधन का अधिकार उस राजनैतिक व्यवस्था के पास आ गया जिसमे हिन्दूओ के विशेष प्रभाव की संभावना है। प्रश्न उठता है कि यदि संविधान मे मनमाना बदलाव करके आप हिन्दूओ को दूसरे दर्जे का नागरिक बनाकर रख सकते है तो उस संविधान मे स्वैच्छिक तरीके से बदलाव करके मुसलमानो को दूसरे दर्जे का नागरिक बना दिया जाय तो पिछली व्यवस्था कैसे आपत्ति कर सकती है। आपने संविधान संशोधन करके मुसलमानो को चार शादी की छूट दी । यदि कोई सरकार संविधान संशोधन करके मुसलमानो की एक से अधिक शादी पर रोक लगाकर हिन्दूओ को चार शादी की छूट दे दे तो आपको विरोध करने का क्या अधिकार हैं? आपने 70 वर्षो तक जिस संविधान का सवैधानिक तरीके से दुरूपयोग किया अब उसके संभावित दुरूपयोग को लेकर शोर करना आपको मंहगा पड सकता है। पूर्व उप राष्टपति हामीद अंसारी शरद यादव सहित कुछ अन्य लोगो ने भी चिंता व्यक्त की है। मुझे लगता है कि ऐसे, साम्प्रदायिकता के लिये बदनाम लोग, यदि सामने आकर बोलेगे तो उससे हिन्दु मुसलमान का ध्रुवीकरण और मजबूत होता जायेगा।

भारत मे 70 वर्षो से संविधान का शासन है। संविधान तंत्र की कठपुतली है। तंत्र न्याय और संविधान के बीच संविधान को उपर मानता है। जब तक संविधान तंत्र का गुलाम रहेगा तब तक यह खतरा बना ही रहेगा। जिन लोगो ने 70 वर्षो तक न्याय की तुलना मे संविधान को सर्वोच्च बताकर उसका दुरूपयोग किया

उन्हे तो कम से कम अवश्य ही चुप रहना चाहिये । हम जैसे जिन लोगो ने उस समय भी संविधान के दुरूपयोग को लेकर के विरोध किया था वैसे लोग भविष्य मे भी ऐसे दुरूपयोग का विरोध करते रहेगे। चाहे वह दुरूपयोग पिछली सरकार ने मुस्लिम हिन्दूस्तान बनाने के लिये किया था अथवा हिन्दू पाकिस्तान बनाने के लिये अगली सरकार कर सकती है। हमारा तो विरोध उचित और स्वाभाविक है किन्तु हम फिर से उस कालखंड की कल्पना नही कर सकते जिसमे मुस्लिम हिन्दूस्तान के रूप मे 70 वर्ष हमने विताये है। एक बार 70 वर्षो तक संविधान का दुरूपयोग करने वालो को सबक मिलना ही चाहिये। भविष्य मे जब खतरा आयेगा तो हम जैसे लोग विरोध करने मे पीछे नही रहेंगे।

सामयिकी

भीडतंत्र पर सुप्रीम कोर्ट की चिंता

भारत मे लगातार भीड द्वारा किन्ही गलत या सही अफवाहो के आधार पर मारपीट और हत्याओ की घटनाए लगातार बढती चली जा रही हैं। सुप्रीम कोर्ट ने भी इस पर बहुत चिंता व्यक्त की है और सरकार से योजना बनाकर प्रस्तुत करने को कहा है। विचारणीय प्रश्न यह है कि ये घटनाए बढ क्यों रही हैं और इनके बढने मे सुप्रीम कोर्ट कितनी दोषी है? जब समाज मे अपराधियो को दंड मिलने मे बहुत अधिक विलंब होता है तब समाज मे गैर कानूनी तरीके से प्रत्यक्ष दंड देने की प्रवृत्ति बढती है। चालीस चालीस हत्याओ का अपराधी मुन्ना बजरंगी जब लम्बे समय तक दंडित नही होता तब समाज उसकी गैर कानूनी हत्या पर प्रसन्नता व्यक्त करता है। यदि कोई गो हत्या अथवा बच्चा चोरी करने वाला अपराधी पचासो वर्ष तक दंडित नही होता है तब भविष्य मे भी ऐसी घटनाए होने पर समाज प्रत्यक्ष दंड देने के विषय मे सोचने लगता है । उच्चतम न्यायालय ने कभी यह क्यो नही सोचा कि इसके लिये बिलम्बित न्याय दोषी है न कि भीड। न्यायपालिका अपराधो के निपटारे को सर्वोच्च प्राथमिकता दे रही होती तो ऐसी घटनाए अपने आप रूक गई होती । न्यायपालिका ने आज सरकार से पूछा कि पर्यावरण प्रदूषण के कारण बढने वाली मौते अधिक चिंता का विषय है अथवा विकास। सर्वोच्च न्यायालय से यह प्रश्न पूछा जाना चाहिये कि हजारो मुकदमो का निपटारा करना सुप्रीम कोर्ट के लिये अधिक प्राथमिक है या पर्यावरण प्रदूषण की चिंता करना। पर्यावरण प्रदूषण की चिंता करने के लिये विधायिका भी है और अलग से न्यायालय भी है। लेकिन अपराधियो को दंड देने के लिये कोई अन्य व्यवस्था नही है। जनहित याचिकाओ के नाम पर सुप्रीम कोर्ट सभी विभागो मे हस्तक्षेप करने की जिस बुराई का शिकार हो रहा है वह बुराई ही सुप्रीम कोर्ट मे न्याय के विलंब का मुख्य कारण बन रही है। अपनी गल्ती को देखने की अपेक्षा दूसरो को गलत सिद्ध करने की बुराई से सुप्रीम कोर्ट को बचना चाहिये। उच्चतम न्यायालय सिर्फ न्यायपालिका मे उच्चतम है न कि सम्पूर्ण शासन व्यवस्था मे । न्यायपालिका विधायिका और कार्यपालिका लगभग समकक्ष है किन्तु उच्चतम शब्द ने न्यायपालिका मे उच्चतम होने का भ्रम पैदा कर दिया है। अब भी समय है कि अपराधियो को दंड देने मे न्यायपालिका को छ महिने से अधिक समय नही लगाना चाहिये। वर्तमान समय मे कुल मिलाकर जितने न्यायाधीश है वे यदि अपराधो के निपटारो तक स्वयं को सीमित कर ले तो संभव है कि छ महिने मे निपटारा कर देने का लक्ष्य आसानी से प्राप्त हो सकता है। पूरे भारत मे कुछ हजार ही गंभीर अपराध मुकदमे । कुल शेषन कोर्ट करीब छ सौ है कोई कठिनाई नही है कि छ महिने मे सभी केस निपट जावे किन्तु इसके लिये न्यायपालिका को अपनी प्राथमिकताए बदलनी पडेगी तथा अपनी सर्वोच्चता का भ्रम भी दूर करना होगा।

हत्याओ का व्यापार और दोषी कौन

भारत एक ऐसा देश है जहां अपराधो का भी निरंतर व्यवसाय चलता रहता है। ऐसे अपराधी यह तकनीक सीख जाते है कि न्यायपालिका और कानून मे कहां कहां कमजोरियां है जिनका फायदा उठाकर वे लगातार सफलता पूर्वक अपना आपराधिक व्यापार बढा सकते है। मुन्ना बजरंगी नामक एक ऐसा ही व्यवसायी अभी जेल मे दूसरे व्यवसायियो के द्वारा मार दिया गया। बजरंगी ने अपने जीवन काल मे अनेको हत्याये की जिनमे से 40 के मुकदमे उस पर लम्बित रहे किन्तु उसे कभी न्याय नही मिला । अब किसी अन्य वैसे ही प्रतिस्पर्धी ने उसे न्याय दिया। प्रश्न उठता है कि दोषी कौन? कोई व्यक्ति 40 हत्याये करके भी अपराधी सिद्ध न हो

तो विचारणीय प्रश्न तो है ही । कानून ऐसे व्यावसायिक अपराधियो को दंडित कराने मे असफल है। न्यायपालिका अपना काम छोडकर झुठी वाहवाही लूटने मे व्यस्त है। आश्चर्य होता है कि एक बलात्कार के भावनात्मक अपराध को त्वरित न्यायालय द्वारा छ महीने मे निर्णय देकर न्यायपालिका अपनी पीठ थपथपाती है। लेकिन इस बात का उत्तर नही देती कि 40 हत्याओ का व्यवसायी अब तक दंडित क्यो नही हो सका। निर्भया जैसे किसी एक केश को उदाहरण मानकर फांसी की घोषणा को सफलता मानने वाले न्यायालय और कानून इस मामले मे चुप क्यो है। कानून बनाने वाले भी महिलाओ के प्रकरण को लेकर बहुत संवेदनशील दिखते है किन्तु व्यावसायिक अपराधियो के विरूद्ध वे संवेदनहीन हो जाते है। अब तो समय आ गया है कि हम समाज के लोग इस बात की खोज करे कि इस प्रकार व्यवसायिक अपराध बढने का दोषी कौन है। यदि ठीक से खोजा जायेगा तो न्यायपालिका विधायिका और कार्यपालिका ही कही कटघरे मे खडे न हो जायें।

सामयिकी

सन् 84 की सिखों की हत्या हत्याकांड न होकर लम्बे समय से बढ़ रहे आक्रोश की प्रतिक्रिया थी। उस हत्याकांड में सिर्फ कांग्रेस ही नहीं बल्कि भाजपा सहित सम्पूर्ण समाज के लोग पूरी तरह शामिल थे। स्वतंत्रता के बाद लगातार सिखों ने अपने को सम्पूर्ण समाज का अंग न मानकर हमेशा असंतोष ही व्यक्त किया। धर्म यदि संस्था का स्वरूप छोड़कर संगठन का रूप लेने लगता है तब ऐसे दुष्परिणाम स्वाभाविक है। इस हत्याकांड के बाद भी सिख लोग हत्याकांड के कारणों पर विचार न करके सिर्फ अपराधियों को दंडित कराने का प्रयत्न करें तो यह उनकी भूल होगी। सबसे पहले तो उन्हें अपना संगठनात्मक स्वरूप भंग करना चाहिये। प्रत्येक सिख धार्मिक मान्यता तक ही सिख है किन्तु सामाजिक आधार पर सम्पूर्ण समाज के सुख–दुख में बराबर का भागीदार है, संगठन के रूप में नहीं। ऐसे सहजीवन की धारणा विकसित होनी चाहिये। यदि समाज के अंदर पृथक समाज की विकृति को नहीं रोका गया तो ऐसी दुर्घटनाओं से मुक्ति कठिन होगी। वर्तमान राजनैतिक स्वार्थ के उद्देश्य से जो लोग सिख उग्रवाद का प्रत्यक्ष या परोक्ष समर्थन करते हैं वे समाज के लिये तो घातक हैं ही, स्वयं सिखों के लिये भी घातक माने जाने चाहिये। सिखों को चाहिये कि वे मुस्लिम सांप्रदायिकता की बढती अविश्वसनीयता से सबक ले और वैसी स्थिति न आने दे जैसी दुनियां में मुसलमानों के साथ हो रही हैं।

सामयिकी

देश भर में भीड द्वारा कानून को अपने हाथ में लेकर मनमाने रूप से बल प्रयोग और हिंसा की घटनाएं बढ रही हैं। समय आ गया है कि हम समाज की इस बुराई के साथ–साथ न्याय और कानून की भी समीक्षा करें।

तीन परिस्थितियों पर विचार करने की आवश्यकता है।

1. एक व्यक्ति डकैती के उद्देश्य से किसी के घर में घुसता है और विरोध होने पर उसकी हत्या कर देता है।
2. एक व्यक्ति डकैती के उद्देश्य से घर में घुसता है। उसे घर वाले मिलकर पकड लेते हैं, उससे पूछताछ करते हैं और उसकी हत्या कर देते हैं।
3. एक व्यक्ति डकैती के उद्देश्य से घुसता है और विरोध होने पर हत्या कर देता है। वह पकडा जाकर थाने को सुपुर्द किया जाता है। जेल से वह गवाह को हत्या की धमकी देता है और गवाह के मुकर जाने के कारण न्यायालय से निर्दोष छूट जाता है।

विचारणीय प्रश्न यह है कि पहली और दूसरी परिस्थिति में जो हत्या हुई है उन दोनों में क्या समान दंड दिया जाना उचित है? वर्तमान समय में दोनों अपराधों को एक समान मानकर एक समान दंड दिया जाता है। तीसरी परिस्थिति में हत्या का अपराधी न्यायालय से निर्दोष छूट जाता है तो विचारणीय प्रश्न यह है कि इसका दोषी कौन ? हत्या हुई यह स्पष्ट है, हत्यारा वहीं था यह भी स्पष्ट है, बिना गवाह के कानून दंड नहीं दे सकता यह भी स्पष्ट है और यदि अपराधी इसी प्रकार अपराध करके बार–बार छूटते रहे तो समाज कानून अपने हाथ में लेगा यह भी स्पष्ट है। क्या यह उचित होगा कि हम कानूनों की असफलता पर विचार करने की अपेक्षा ऐसे ही

और नये–नये कानून बनाते जायें जिन पर समाज का विश्वास लगातार उठता जा रहा है। असफल न्यायपालिका इस बात की समीक्षा क्यों नहीं करती कि समाज का कानून की अपेक्षा हिंसा पर विश्वास क्यों बढ रहा है। असफल न्यायपालिका जितना परिश्रम इन घटनाओं को रोकने की चिंता में कर रही है वही न्यायपालिका यह जॉच क्यों नहीं कराती है कि भारत में वास्तविक अपराधियों का अपराध करने के बाद भी न्यायालय से निर्दोष छूटने का प्रतिशत क्या है और इसका कारण क्या है। न्यायपालिका और विधायिका को मिलकर एक आयोग बनाना चाहिए जो इन समस्याओं के कारणो पर विचार करे और समाधान खोजे। निकम्मी व्यवस्था अपनी असफलता को छिपाने के लिए सारा दोष समाज पर डाल देती है यह ठीक नहीं।

उत्तरार्ध

अब हमलोगो ने दिल्ली की जगह ऋषिकेश मे बजरंग मुनि सामाजिक शोध संस्थान तथा ज्ञान यज्ञ परिवार का प्रबंध कार्यालय शुरू कर दिया है। अपने सभी साथी वही रहते है। कार्यालय का पता इस प्रकार है–

बजरंग मुनि सामाजिक शोध संस्थान, मकान नम्बर–104/19, जोशी सर्जिकल अस्पताल के सामने वाली गली, देहरादून रोड, ऋषिकेश, उत्तराखंड 249201